श्री राम
और
श्री कृष्ण

परम पूज्यपाद श्री रामकिंकरजी महाराज

श्रीराम और श्रीकृष्ण

तात्त्विक विवेचना

युगतुलसी पद्मभूषण
परम पूज्यपाद श्रीरामकिंकर जी महाराज

रामायणम् ट्रस्ट
रामायणम् आश्रम, युग तुलसी पं. रामकिंकर उपाध्याय
परिक्रमा मार्ग, जानकी घाट, श्रीधाम अयोध्या-२२४ १२३ (उ. प्र.)
फोन - (०५२७८) २३२१५२

प्रकाशक :
रामायणम् ट्रस्ट
रामायणम् आश्रम, युग तुलसी पं. रामकिंकर उपाध्याय परिक्रमा मार्ग,
जानकी घाट, श्रीधाम अयोध्या-२२४ १२३
फोन - (०५२७८) २३२१५२ फैक्स - २३३४६८

द्वितीय संस्करण : सन् २००८, वसंत पंचमी, सम्वत् २०६४

मूल्य : २५/-

मुद्रक : अमृत ऑफसेट, ५६८, मढ़ाताल, जबलपुर (म. प्र.)
फोन : ०७६१ - २४१३६४३

।। श्री रामः शरणं मम ।।

अनुसार

आज के युग का मानव एवं समाज उत्तरोत्तर दिग्मूढ़ होकर मूल्यहीनता के गम्भीर गर्त में गिरता जा रहा है। 'स्वार्थ' का दानव अपना विकराल मुँह फैलाए - मनुष्य की सुख-शांति को निगलता जा रहा है। हम पाश्चात्य देशों की भौतिक उन्नति-समृद्धि की चकाचौंध से प्रभावित होकर भोगवादी संस्कृति में अपनी अनुरक्ति बढ़ा रहे हैं। भूमण्डलीकरण और बाजारवाद के इस दौर में मनुष्य स्वयं एक वस्तु बन गया है। त्याग, समर्पण, परहित, प्रेम, आदर्श एवं नैतिकता जैसे शब्द आज शब्दकोष तक सीमित होते जा रहे हैं, और सत्य यह है कि मानवीय मूल्य ही आदर्श मानव समाज के विकास और प्रगति के मूल आधार हैं।

श्रीराम का चरित्र और श्रीराम की कथा ही इनका अक्षय कोष है जो हमें सुदृढ़ एवं सुसंस्कृत बनाती है। भारतीय संस्कृति एवं समाज के विकास में रामकथा का अप्रतिम योगदान रहा है। रामकथा की लोकप्रियता सर्वविदित है। भारत ही नहीं, विश्व के अनेक देशों में शताब्दियों से रामकथा का प्रचार-प्रसार होता रहा है।

युग तुलसी स्वनामधन्य परम पूज्य श्रीरामकिंकर जी महाराज श्रीरामचरितमानस के सर्वमान्य, सर्वोपरि विद्वान् हैं। "रामकथा के प्रति उनकी अपनी दर्शन-दृष्टि है, जो विलक्षण है। परम पूज्य महाराज श्री ने जो मूल्यपरक चिंतन दिया है, उसके द्वारा राष्ट्र एवं समाज का हित तो होगा ही, उनके विचारों के आलोक से समाज को एक नई प्रेरणा, गति एवं स्फूर्ति भी मिलेगी। परम पूज्य महाराजश्री के साहित्य का अनुवाद गुजराती, मराठी, उड़िया और अंग्रेजी भाषा में तो हो ही चुका है, अन्य अनेक भाषाओं में भी कार्य प्रगति पर है।

परम पूज्य महाराजश्री के साहित्य पर निरंतर अनुशीलन अत्यन्त आवश्यक है। अनेक विद्यार्थियों ने पी.एच.डी. और डी.लिट् की उपाधि प्राप्त कर ली है और इस कार्य की महत्ता और गुणवत्ता समझकर - मध्यप्रदेश और उत्तरप्रदेश के अनेक विश्वविद्यालयों में शोधपीठ की स्थापना हो रही है।

स्वार्थ और परमार्थ दोनों की प्राप्ति कराने वाला संतुलित चिंतन व्यक्ति

की कामना पूर्ति का मार्ग बनाते हुए, राष्ट्रहित और समाज का कल्याण कैसे हो, ऐसा विलक्षण जीवन दर्शन परम पूज्य महाराजश्री ने प्रदान किया है।

परम पूज्य महाराजश्री ने सगुण लीला - इस धरती पर ७८ वर्षों तक की, और संप्रति वे श्रीराम की दिव्य भूमि, श्री अयोध्याधाम में सरयू के तट पर माँ जानकीजी की गोद में (रामायणम् धाम में) समाधिस्त होकर अपने सत्संकल्पों और अधूरे स्वप्नों का ऐसा दिग्दर्शन कर रहे हैं; जिसमें दिव्य चेतना और उपस्थिति का दर्शन निकट और सुदूर बैठे हुए अनेक प्रेमीं सुजनों/स्वजनों को उनका अनुभव, बोध भी हो रहा है।

उनमें से ऐसे सुजन पात्र हैं - श्रीमती अंजू एवं श्री अरुण गणात्रा (लन्दन स्थित परम पूज्य महाराजश्री के निष्ठावान् भक्त दम्पति) जो परम पूज्य महाराजश्री के चिंतन को व्यापक बनाने में समर्पित हैं। उन्हीं के योगदान से ये नयी पुस्तिकायें लघुरूप में छपी हैं। ताकि समय के मारे आज की भागदौड़ में लगे हुए मानव को अमृत की एक बूँद भी मिल जाये तो भी उसका कलिकाल में कल्याण हो जायेगा। परम पूज्य महाराजश्री के चरणों में प्रार्थना है कि उनकी ऐसी सद्बुध्दि, सुमति, सद्भाव और सद्विचार बने रहें।

रामायणम् ट्रस्ट के सभी ट्रस्टीगण इस सद्कार्य में लोकमंगल के लिये समर्पित हैं। समाज के प्रत्येक वर्ग के सहयोग से, यह कठिन कार्य संभव हो पा रहा है, और यही सभी सुधी जनों से प्रार्थना है कि भविष्य में भी तन, मन, धन से आपका सहयोग निरंतर मिलता रहेगा, ऐसा विश्वास है।

आश्रमवासी सभी सेवकवृन्द अथक भाव से परम पूज्य महाराजश्री की सेवा में समर्पित हैं। श्री नरेन्द्र शुक्ल, श्री जयप्रकाश शुक्ल, श्री विनय शुक्ल, श्री टी. एन. अग्रवाल, श्री मुकेश शर्मा और श्री राधेश्याम को भी मेरा हार्दिक आशीर्वाद! अंत में परम पूज्य सद्गुरुदेव भगवान् के श्री चरणों में एक ही प्रार्थना -

हम चातक तुम स्वाति घन, अपनी बस यह आस।
तुम बरसौ चिरकाल तक, बुझै न मन की प्यास।।

सदैव श्री सद्गुरु शरण में. . .

- मन्दाकिनी श्रीरामकिंकरजी

।। श्री रामः शरणं मम ।।

महाराज श्री : एक परिचय

प्रभु की कृपा और प्रभु की वाणी का यदि कोई सार्थक पर्यायवाची शब्द ढूँढ़ा जाए, तो वह हैं - प्रज्ञापुरुष, भक्तितत्त्व द्रष्टा, सन्त प्रवर, 'परमपूज्य महाराजश्री रामकिंकर जी उपाध्याय।' अपनी अमृतमयी, धीर, गम्भीर-वाणी-माधुर्य द्वारा भक्ति रसाभिलाषी-चातकों को, जनसाधारण एवं बुद्धिजीवियों को, नानापुराण निगमागम षट्शास्त्र वेदों का दिव्य रसपान कराकर रससिक्त करते हुए, प्रतिपल निज व्यक्तित्व व चरित्र में श्रीरामचरितमानस के ब्रह्म राम की कृपामयी विभूति एवं दिव्यलीला का भावात्मक साक्षात्कार करानेवाले पूज्य महाराज श्री आधुनिक युग के परम तेजस्वी मनीषी, मानस के अद्भुत शिल्पकार, रामकथा के अद्वितीय अधिकारी व्याख्याकार हैं।

भक्त-हृदय, रामानुरागी पूज्य महाराजश्री ने अपने अनवरत अध्यवसाय से श्रीरामचरितमानस की मर्मस्पर्शी भाव-भागीरथी बहाकर अखिल विश्व को अनुप्राणित कर दिया है। आपने शास्त्र दर्शन, मानस के अध्ययन के लिये जो नवीन दृष्टि और दिशा प्रदान की है, वह इस युग की एक दुर्लभ अद्वितीय उपलब्धि है-

धेनवः सन्तु पन्थानः दोग्धा हुलसिनन्दनः।
दिव्यराम-कथा दुग्धं प्रस्तोता रामकिंकरः।।

जैसे पूज्य महाराजश्री का अनूठा भाव दर्शन वैसे ही उनका जीवन दर्शन अपने आप में एक सम्पूर्ण काव्य है। आपके नामकरण में ही जैसे श्री हनुमानूजी की प्रतिच्छाया दर्शित होती है, वैसे ही आपके जन्म की गाथा में ईश्वर कारण प्रकट होता है। आपका जन्म १ नवम्बर सन् १९२४ को जबलपुर (मध्यप्रदेश) में हुआ। आपके पूर्वज मिर्जापुर के बरैनी नामक गाँव के निवासी थे। आपकी माता परम भक्तिमती श्री धनेसरा देवी एवं पिता पूज्य पं. शिवनायक उपाध्यायजी रामायण के सुविज्ञ व्याख्याकार एवं हनुमानूजी महाराज के परम भक्त थे। ऐसी मान्यता है कि श्रीहनुमानूजी के प्रति उनके पूर्ण समर्पण एवं अविचल भक्तिभाव के कारण उनकी बढ़ती अवस्था में श्रीहनुमत्जयन्ती के ठीक सातवें दिन उन्हें एक विलक्षण प्रतिभायुक्त पुत्ररत्न की प्राप्ति दैवी कृपा से हुई। इसीलिए उनका नाम **'रामकिंकर'**

अथवा **राम का सेवक** रखा गया।

जन्म से ही होनहार व प्रखर बुद्धि के आप स्वामी रहे हैं। आपकी शिक्षा-दीक्षा जबलपुर व काशी में हुई। स्वभाव से ही अत्यन्त संकोची एवं शान्त प्रकृति के बालक रामकिंकर अपनी अवस्था के बच्चों की अपेक्षा कुछ अधिक गम्भीर थे। एकान्तप्रिय, चिन्तनरत, विलक्षण प्रतिभावाले सरल बालक अपनी शाला में अध्यापकों के भी अत्यन्त प्रिय पात्र थे। बाल्यावस्था से ही आपकी मेधाशक्ति इतनी विकसित थी कि क्लिष्ट एवं गम्भीर लेखन, देश-विदेश का विशद साहित्य अल्पकालीन अध्ययन में ही आपके स्मृति पटल पर अमिट रूप से अंकित हो जाता था। प्रारम्भ से ही पृष्ठभूमि के रूप में माता-पिता के धार्मिक विचार एवं संस्कारों का प्रभाव आप पर पड़ा, परन्तु परम्परानुसार पिता के अनुगामी वक्ता बनने का न तो उनका कोई संकल्प था, न कोई अभिरुचि।

कालान्तर में विद्यार्थी जीवन में पूज्य महाराजश्री के साथ एक ऐसी चमत्कारिक घटना हुई कि जिसके फलस्वरूप आपके जीवन ने एक नया मोड़ लिया। १८ वर्ष की अल्प अवस्था में जब पूज्य महाराजश्री अध्ययनरत थे, तब अपने कुलदेवता श्री हनुमानूजी महाराज का आपको अलौकिक स्वप्नदर्शन हुआ, जिसमें उन्होंने आपको वटवृक्ष के नीचे शुभासीन करके दिव्य तिलक कर आशीर्वाद देते हुए कथा सुनाने का आदेश दिया। स्थूल रूप में इस समय आप बिलासपुर में अपने पूज्य पिता के साथ छुट्टियाँ मना रहे थे। यहाँ पिताश्री की कथा चल रही थी। ईश्वरीय संकल्पानुसार परिस्थिति भी अचानक कुछ ऐसी बन गई कि अनायास ही, पूज्य महाराजश्री के श्रीमुख से भी पिताजी के स्थान पर कथा कहने का प्रस्ताव एकाएक निकल गया।

आपके द्वारा श्रोता समाज के सम्मुख यह प्रथम भाव प्रस्तुति थी। किन्तु कथन शैली व वैचारिक शृंखला कुछ ऐसी मनोहर बनी कि श्रोतासमाज विमुग्ध होकर, तन-मन व सुध-बुध खोकर उसमें अनायास ही बँध गया। आप तो रामरस की भावमाधुरी की बानगी बनाकर, वाणी का जादू कर मौन थे, किन्तु श्रोता समाज आनन्दमग्न होने पर भी अतृप्त था। इस प्रकार प्रथम प्रवचन से ही मानस प्रेमियों के अन्तर में गहरे पैठकर आपने अभिन्नता स्थापित कर ली।

ऐसा भी कहा जाता है कि २० वर्ष की अल्प अवस्था में आपने एक और स्वप्न देखा, जिसकी प्रेरणा से आपने गोस्वामी तुलसीदास के ग्रन्थों के प्रचार एवं उनकी खोजपूर्ण व्याख्या में ही अपना समस्त जीवन समर्पित कर देने का दृढ़ संकल्प कर लिया। यह बात अकाट्य है कि प्रभु की प्रेरणा और संकल्प से जिस कार्य का शुभारम्भ होता है, वह मानवीय स्तर से कुछ अलग ही गति-प्रगति वाला होता है। शैली की नवीनता व चिन्तनप्रधान विचारधारा के फलस्वरूप आप शीघ्र ही विशिष्टतः आध्यात्मिक जगत् में अत्यधिक लोकप्रिय हो गए।

ज्ञान-विज्ञान पथ में पूज्यपाद महाराजश्री की जितनी गहरी पैठ थी, उतना ही प्रबल पक्ष, भक्ति साधना का, उनके जीवन में दर्शित होता है। वैसे तो अपने संकोची स्वभाव के कारण उन्होंने अपने जीवन की दिव्य अनुभूतियों का रहस्योद्घाटन अपने श्रीमुख से बहुत आग्रह के बावजूद नहीं किया। पर कहीं-कहीं उनके जीवन के इस पक्ष की पुष्टि दूसरों के द्वारा जहाँ-तहाँ प्राप्त होती रही। उसी क्रम में उत्तराखण्ड की दिव्य भूमि ऋषिकेश में श्रीहनुमानूजी महाराज का प्रत्यक्ष साक्षात्कार, निष्काम भाव से किए गए, एक छोटे से अनुष्ठान के फलस्वरूप हुआ! वैसे ही श्री चित्रकूट धाम की दिव्य भूमि में अनेकानेक अलौकिक घटनाएँ परम पूज्य महाराजश्री के साथ घटित हुईं। जिनका वर्णन महाराजश्री के निकटस्थ भक्तों के द्वारा सुनने को मिला! परमपूज्य महाराजश्री अपने स्वभाव के अनुकूल ही इस विषय में सदैव मौन रहे।

प्रारम्भ में भगवान् श्रीकृष्ण की दिव्य लीलाभूमि वृन्दावन धाम के परमपूज्य महाराजश्री, ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी महाराज के आदेश पर आप वहाँ कथा सुनाने गए। वहाँ एक सप्ताह तक रहने का संकल्प था। पर यहाँ के भक्त एवं साधु-सन्त समाज में आप इतने लोकप्रिय हुए कि उस तीर्थधाम ने आपको ग्यारह माह तक रोक लिया। उन्हीं दिनों में आपको वहाँ के महान् सन्त अवधूत श्रीउड़िया बाबाजी महाराज, भक्त शिरोमणि श्रीहरिबाबाजी महाराज, स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी महाराज को भी कथा सुनाने का सौभाग्य मिला। कहा जाता है कि अवधूत पूज्य श्रीउड़िया बाबा, इस होनहार बालक के श्रीमुख से निःसृत, विस्मित कर देने वाली वाणी से इतने अधिक प्रभावित थे कि वे यह मानते थे कि यह किसी पुरुषार्थ या प्रतिभा का परिणाम न होकर के शुद्ध भगवत्कृपा का प्रसाद है। उनके शब्दों में-**"क्या तुम समझते हो, कि यह बालक बोल रहा है? इसके माध्यम से तो साक्षात् ईश्वरीय वाणी का अवतरण हुआ है।"**

इसी बीच अवधूत श्रीउड़िया बाबा से संन्यास दीक्षा ग्रहण करने का संकल्प

आपके हृदय में उदित हुआ और परमपूज्य बाबा के समक्ष अपनी इच्छा प्रकट करने पर बाबा के द्वारा लोक एवं समाज के कल्याण हेतु उन्हें शुद्ध संन्यास वृत्ति से जनमानस-सेवा की आज्ञा मिली।

सन्त आदेशानुसार एवं ईश्वरीय संकल्पानुसार मानस प्रचार-प्रसार की सेवा दिन-प्रतिदिन चारों दिशाओं में व्यापक होती गई। इसी बीच काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से आपका सम्पर्क हुआ। काशी में प्रवचन चल रहा था। इस गोष्ठी में एक दिन भारतीय पुरातत्त्व और साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् एवं चिन्तक श्री वासुदेव शरण अग्रवाल आपकी कथा सुनने के लिये आए और आपकी विलक्षण एवं नवीन चिन्तन शैली से वे इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति श्री वेणीशंकर झा एवं रजिस्ट्रार श्री शिवनन्दनजी दर से Prodigious (विलक्षण प्रतिभायुक्त) प्रवक्ता के प्रवचन का आयोजन विश्वविद्यालय प्रांगण में रखने का आग्रह किया। आपकी विद्वत्ता इन विद्वानों के मनोमस्तिष्क को ऐसे उद्वेलित कर गई कि आपको अगले वर्ष से 'विजिटिंग प्रोफेसर' के नाते काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में व्याख्यान देने के लिये निमन्त्रित किया गया। इसी प्रकार काशी में आपका अनेक सुप्रसिद्ध साहित्यकार जैसे श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी, श्री महादेवी वर्मा से साक्षात्कार एवं शीर्षस्थ सन्तप्रवर का सान्निध्य भी प्राप्त हुआ।

परम पूज्य महाराजश्री परम्परागत कथावाचक नहीं हैं, क्योंकि कथा उनका साध्य नहीं, साधन है। उनका उद्देश्य है भारतीय जीवन पद्धति की समग्र खोज अर्थात् भारतीय मानस का साक्षात्कार। उन्होंने अपने विवेक प्रदीप्त मस्तिष्क से, विशाल परिकल्पना से श्रीरामचरितमानस के अन्तर्रहस्यों का उद्घाटन किया है। आपने जो अभूतपूर्व एवं अनूठी दिव्य दृष्टि प्रदान की है, जो भक्ति-ज्ञान का विश्लेषण तथा समन्वय, शब्द ब्रह्म के माध्यम से विश्व के सम्मुख रखा है, उस प्रकाश स्तम्भ के दिग्दर्शन में आज सारे इष्ट मार्ग आलोकित हो रहे हैं! आपके अनुपम शास्त्रीय पाण्डित्य द्वारा, न केवल आस्तिकों का ही ज्ञानवर्धन होता है अपितु नयी पीढ़ी के शंकालु युवकों में भी धर्म और कर्म का भाव संचित हो जाता है। **'कीरति भनिति भूति भलि सोई'**....के अनुरूप ही आपको ज्ञान की सुरसरि अपने उदार व्यक्तित्व से प्रबुद्ध और साधारण सभी प्रकार के लोगों में प्रवाहित करके **'बुध विश्राम'** के साथ-साथ **'सकल जन रंजनी'** बनाने में यत्नरत रहे हैं। मानस सागर में बिखरे हुए विभिन्न रत्नों को सँजोकर आपने अनेक आभूषण रूपी ग्रन्थों की सृष्टि की है। मानस-मन्थन, मानस-चिन्तन, मानस-दर्पण, मानस-मुक्तावली और मानस-चरितावली जैसी आपकी अनेकानेक अमृतमयी लगभग १०० अमर कृतियाँ हैं जो दिग्दिगन्तर तक प्रचलित रहेंगी। आज भी वह लाखों लोगों को रामकथा का अनुपम पीयूष वितरण कर रही हैं और भविष्य में भी अनुप्राणित एवं प्रेरित करती रहेंगी। तदुपरान्त अन्तर्राष्ट्रीय रामायण सम्मेलन नामक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के भी आप अध्यक्ष रहे।

निष्कर्षतः आप अपने प्रवचन, लेखन और सम्प्रति शिष्य परम्परा द्वारा जिस रामकथा पीयूष का मुक्तहस्त से वितरण कर रहे हैं, वह जन-जन के तप्त एवं शुष्क मानस में नवशक्ति का सिंचन और शान्ति प्रदान कर समाज में आध्यात्मिक एवं दार्शनिक चेतना जाग्रत् कर रही है।

परम पूज्य महाराजश्री का स्वर उसी वंशी के समान है, जो 'स्वर सन्धान' कर सभी को मन्त्रमुग्ध कर देती है। वंशी में भगवान् का स्वर ही गूँजता है। उसका कोई अपना स्वर नहीं होता। परमपूज्य महाराजश्री भी एक ऐसी ही वंशी हैं, जिसमें भगवान् के स्वर का स्पन्दन होता है। साथ-साथ उनकी वाणी के तरकश से निकले, वे तीक्ष्ण विवेक के बाण अज्ञान-मोह-जन्य पीड़ित जीवों की भ्रान्तियों, दुर्वृत्तियों एवं दोषों का संहार करते हैं। यों आप श्रद्धा और भक्ति की निर्मल मन्दाकिनी प्रवाहित करते हुए महान् लोक-कल्याणकारी कार्य सम्पन्न कर रहे हैं।

रामायणम् ट्रस्ट परम पूज्य महाराजश्री रामकिंकरजी द्वारा संस्थापित एक ऐसी संस्था है जो तुलसी साहित्य और उसके महत् उद्देश्यों को समर्पित है। मेरा मानना है कि परम पूज्य महाराजश्री की लेखनी से ही तुलसीदासजी को पढ़ा जा सकता है और उन्हीं की वाणी से उन्हें सुना भी जा सकता है। महाराजश्री के साहित्य और चिन्तन को समझे बिना तुलसीदासजी के हृदय को समझ पाना असम्भव है।

रामायणम् आश्रम अयोध्या जहाँ महाराजश्री ने ९ अगस्त सन् २००२ को समाधि ली वहाँ पर अनेकों मत-मतान्तरों वाले लोग जब साहित्य प्राप्त करने आते हैं तो महाराजश्री के प्रति वे ऐसी भावनाएँ उड़ेलते हैं कि मन होता है कि महाराजश्री को इन्हीं की दृष्टि से देखना चाहिए। वे अपना सबकुछ न्यौछावर करना चाहते हैं उनके चिन्तन पर। महाराजश्री के चिन्तन ने रामचरितमानस के पूरे घटनाक्रम को और प्रत्येक पात्र की मानसिकता को जिस तरह से प्रस्तुत किया है उसको

पढ़कर आपको ऐसा लगेगा कि आप उस युग के एक नागरिक हैं और वे घटनाएँ आपके जीवन का सत्य हैं।

हम उन सभी श्रेष्ठ वक्ताओं के प्रति भी अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं जो महाराजश्री के चिन्तन को पढ़कर प्रवचन करते हैं और मंच से उनका नाम बोलकर उनकी भावनात्मक आरती उतारकर अपने बड़प्पन का परिचय देते हैं।

रामायणम् ट्रस्ट के सभी ट्रस्टीगण इस भावना से ओत-प्रोत हैं कि ट्रस्ट की सबसे प्रमुख सेवा यही होनी चाहिए कि वह एक स्वस्थ चिन्तन के प्रचार-प्रसार में जनता को दिशा एवं दृष्टि दे और ऐसा सन्तुलित चिन्तन परम पूज्य श्रीरामकिंकरजी महाराज में प्रकाशित होता और प्रकाशित करता दिखता है। सभी पाठकों के प्रति मेरी हार्दिक मंगलकामनाएँ!

प्रभु की शरण में
- मन्दाकिनी श्रीरामकिंकरजी

॥श्रीरामः शरणं मम॥

श्रीराम और श्रीकृष्ण

बहुधा यह कहा जाता है कि भगवान् श्रीराम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं और भगवान् श्रीकृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम या लीला पुरुषोत्तम हैं। इससे यह लगता है कि दोनों की लीला में कुछ-न-कुछ अन्तर है। इस मान्यता से मैं पूरी तरह सहमत तो नहीं हूँ, परन्तु इस रूप में भी इस समस्या का समाधान किया जा सकता है और इस प्रकार के समाधान से भी कुछ लोगों को सन्तोष होता है, पर यदि हम 'श्रीरामचरितमानस' और 'श्रीमद्भागवत' की दृष्टि पर विचार करें तो कुछ प्रसंग इन दोनों ग्रन्थों में ऐसे हैं कि जिनमें साम्यता है, एक जैसे हैं और कुछ प्रसंग ऐसे हैं कि जिनमें भिन्नता है। इनका सम्बन्ध वस्तुतः जीव के अन्तःकरण की विभिन्न स्थितियों से है।

प्रभु तो एक ही हैं और वे एक ही प्रभु अपने को विभिन्न रूपों में प्रस्तुत करते हैं। प्रश्न यह है कि भगवान् के इतने रूपों का वर्णन किया जाता है और उनमें परस्पर इतनी भिन्नता प्रतीत होती है तो वस्तुतः भगवान् का वास्तविक रूप कौन-सा है? श्री काकभुशुण्डिजी ने इसका एक बड़ा ही सुन्दर समाधान यह कहकर प्रस्तुत किया कि नाटक के रंगमंच पर अभिनेता किसी एक पात्र का अभिनय करता है और उसी रंगमंच पर यदि दूसरा नाटक खेला जाय तो यह आवश्यक नहीं है कि वही अभिनेता दूसरे नाटक में भी उसी रूप में आये। एक ही अभिनेता को हम भिन्न-भिन्न नाटकों में अलग-अलग रूपों में देखते हैं। अब यदि इस बात को लेकर विवाद किया जाय कि

कौन-सा अभिनेता श्रेष्ठ है? और कौन-सा श्रेष्ठ नहीं है? तो यह बात वस्तुतः केवल रुचि से सम्बन्धित है, इसका तत्त्वतः कोई अर्थ नहीं है। गोस्वामीजी इसका समाधान प्रस्तुत करते हैं–

जथा अनेक बेष धरि नृत्य करइ नट कोइ।७/७२ख

और इस अभिनेता की विशेषता यह है कि जिस नाटक में उसको जो पाठ (पाट) दिया गया है, वह उसी प्रकार के कार्यों का निर्वाह करता है। अभिनय की सफलता इसी में है कि वह उस पाठ में तदाकार हो जाय। उसको उसकी भूमिका में इतना आनन्द आता है कि वह कुछ समय के लिए भूल जाता है और भूल जाना चाहिए कि यह नाटक है, वह उस रस में तदाकार हो जाता है, तन्मय हो जाता है। अभिनेता के भिन्न-भिन्न पात्रों के रूप में आने पर भी यदि उससे पूछा जाय कि तुम वस्तुतः कौन हो? या तुम्हारा किस नाटक में अभिनय वस्तुतः बहुत अच्छा था? और किस नाटक में वस्तुतः तुम्हारा अभिनय उतना अच्छा नहीं था? तो साधारण अभिनेता के सन्दर्भ में तो ऐसा हो सकता है कि किसी नाटक में उसका अभिनय श्रेष्ठ हो और किसी में उतना अच्छा न हो। जब ईश्वर ही रंगमंच पर अभिनेता बन करके अभिनय करने के लिए प्रस्तुत हो जाय तब क्या हो? ईश्वर से पूछा गया कि आपने इतने अवतार लिये और अनेक रूपों में अपने आपको प्रकट किया, इसमें सबसे अच्छा अभिनय आपका कौन-सा है? तब प्रभु तो मुस्कुराकर यही पूछेंगे कि आप ही बताइए कि आपको कौन-सा अभिनय अच्छा लगा? मेरे लिए तो उनमें कोई अन्तर नहीं है, हमको तो जो भी भूमिका दी जाती है, कर लेते हैं, लेकिन दर्शकों की रुचि में भिन्नता होती है।

वस्तुतः किसी को किसी नाटक में अधिक रस आता है तो किसी को किसी दूसरे में। अभिनेता की विलक्षणता यह है कि वह तदाकार भी है और निर्लेप भी। यदि तन्मय नहीं होगा तो अभिनय

में सफलता नहीं मिलेगी, परन्तु तदाकार होकर भी वह तदाकार नहीं हो पाता, क्योंकि यदि सचमुच वह अपने आपको वही मान ले, जिस रूप में वह किसी नाटक में काम कर रहा हो तो सचमुच किसी दूसरे नाटक में वह संकट में पड़ जायेगा। इसलिए वह एक रूप में जब अभिनय करता है तो उसी रूप में डूब जाता है और साथ-साथ उस अभिनय से अपने आपको अलग भी रखता है, यही इस दोहे में कहा गया है–

जथा अनेक बेष धरि नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ आपुन होइ न सोइ।।७/७२ख

वह नाटक में भाव दिखाता है लेकिन वही हो नहीं जाता। मैं तो इसे यों कहूँगा कि विश्व रंगमंच पर अवतरित होकर प्रभु ने लीलाएँ कीं, अब उन लीलाओं में श्रेष्ठता एवं कनिष्ठता वस्तुतः प्रभु की दृष्टि से नहीं है, पर हमारी-आपकी दृष्टि से तो है ही। इस अन्तर का कारण यह है कि प्रत्येक व्यक्ति का अन्तःकरण भिन्न-भिन्न प्रकार का बना हुआ है। उसमें संस्कारों की भिन्नता है, वातावरण की भिन्नता है तथा सोचने की पद्धति में भिन्नता है। नाटक में कुछ लोगों को हास्य में बड़ा आनन्द आता है तो कुछ को गम्भीर दृश्यों में और कुछ को करुणा में ही बड़ा आनन्द आता है। यह वस्तुतः दर्शक की रुचि की भिन्नता है, अभिनेता के लिए इसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। हमारे प्रभु वे ही श्रीराम हैं और वे ही प्रभु श्रीकृष्ण हैं।

परम सन्त बिल्वमंगलजी ने कहा कि प्रभु! आप बड़े ही सुन्दर लग रहे हैं, लेकिन धनुष-बाण के स्थान पर यदि मुरली होती तो अच्छा होता और सचमुच अगले ही क्षण उन्हें धनुष-बाण नहीं, वंशी दिखलायी देती है। दूसरी दृष्टि में वृन्दावन में गोस्वामीजी भगवान् श्रीकृष्ण के मन्दिर में जाते हैं। लोग अक्सर इसका उल्टा अर्थ ले लेते हैं और समझते हैं कि बिल्वमंगल और गोस्वामीजी के मन में भेद है। यह तो बिल्कुल उल्टी बात है। यदि भेद होता तो बिल्वमंगल

श्रीराम मन्दिर में और गोस्वामीजी श्रीकृष्ण मन्दिर में क्यों जाते? वे जानते हुए गये थे। गोस्वामीजी के बारे में तो प्रसिद्ध ही है। जब वे श्रीकृष्ण की मूर्ति के सामने खड़े हुए तो किसी भक्त ने व्यंग्य कर दिया, उनका नाम संस्मरणों में परशुरामदास के नाम से प्रसिद्ध है, उन्होंने गोस्वामीजी को देखा तो कह दिया कि–

अपने अपने इष्ट को नमन करे सब कोय।
परसुराम जो आन को नमै सो मूरख होय।।

गोस्वामीजी तो दोनों को एक ही मानते थे, इसीलिए आये थे, एक न मानते तो आते ही क्यों? परन्तु जब देखा कि इनके मन में इतना भेद है तो तुरन्त प्रभु से प्रार्थना की कि आप इस रूप में बड़े ही सुन्दर हैं, लेकिन यदि वंशी के स्थान पर धनुष-बाण होता तो और भी अधिक आनन्द आता। बस इतना कहना था कि धनुष-बाण ले लिया, वंशी हट गयी। क्या फरक पड़ता है? धनुष-बाण है तो शरसंधान करते हैं और वंशी है तो स्वरसंधान करते हैं। तो चाहे शरसंधान करें चाहे स्वरसंधान करें। दोनों का उद्देश्य तो जीव को बुलाना ही है।

वंशीध्वनि से गोपियाँ व्याकुल होकर उनकी ओर आकृष्ट होकर दौड़ी आती हैं। कुछ लोगों को धनुष-बाण ही आकृष्ट करता है। कुछ लोग ऐसे भी हैं कि जो कहते हैं कि हमको तो धनुष-बाण देखकर डर लगता है। यह तो अपनी-अपनी पसन्द है, रुचि है। उद्देश्य क्या है? वंशी के द्वारा भगवान् कृष्ण उनको पास बुलाते हैं जो प्रेमी हैं और श्रीराम बाण के द्वारा भी उनको पास बुलाते हैं जिनमें प्रेम बिल्कुल नहीं है। ये शर किसलिए चला रहे हैं? जितने राक्षस हैं उनसे मिलने के लिए ही तो चला रहे हैं। रावण का सिर जब बाणों के द्वारा कटता है तो क्या रावण को मारने के लिए? नहीं–

तासु तेज समान प्रभु आनन।
हरषे देखि संभु चतुरानन।।६/१०२/६

रावण के मुख से तेज निकलकर भगवान् के मुख में समा जाता है। भगवान् कहते हैं कि सीधे आओ तो वंशी सुनाकर बुलाऊँगा और यदि सीधे नहीं आओगे तो बाण चलाकर बुला लूँगा, लेकिन बुलाऊँगा अवश्य। किसी तरह से जीव को अपनी ओर खींचना है, आकृष्ट करना है। मुख्य बात यह है कि प्रभु में कोई भिन्नता नहीं है, पूर्णता या अपूर्णता वाली बात भी नहीं है। बहुधा लोग ऐसे शब्द कहा करते हैं जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम एवं लीला पुरुषोत्तम। अरे भई! जब दोनों एक ही हैं तो एक ही पूर्ण है और अपूर्ण है। जो ब्रह्म है उसमें भी पूर्णता और अपूर्णता क्या है? यह तो वस्तुतः किसी तरह भी उपयुक्त नहीं है।

एक ही पूर्ण ब्रह्म है जो रंगमंच पर अवतरित होता है। लीला में जो भिन्नता दिखायी देती है, इसका अभिप्राय क्या है? तीन सूत्र इस सन्दर्भ में हैं–युग की भिन्नता, काल की भिन्नता और व्यक्ति की भिन्नता। वे श्रीराम के रूप में त्रेतायुग में अवतरित होते हैं और श्रीकृष्ण के रूप में द्वापरयुग में। काल की भिन्नता में एक का अवतार होता है चैत्र मास में और दूसरे का भाद्रपद की अष्टमी को वर्षाकाल में। एक ने राजमहल में जन्म लिया तो दूसरे ने कारागार में। ये तीन भिन्नताएँ हैं–देश, काल और व्यक्ति की। इसका बड़ा सरल सूत्र यह है कि यह तो हमारे अन्तःकरण की आवश्यकता पर निर्भर है कि हमारा अन्तःकरण त्रेतायुग में निवास करता है कि द्वापरयुग में। और भी सूक्ष्मता से कहें तो इसका अभिप्राय यह है कि हमारा अन्तःकरण सर्वदा एक ही युग में निवास करता है कि अलग-अलग युगों में?

युगों के अन्तरंग रूप में हमारे-आपके जीवन में भी भिन्नता दिखायी देती है। कुछ लोग ध्यान प्रधान हैं, उनमें एकाग्रता है, वे सतयुग में निवास करने वाले हैं। कुछ लोगों के जीवन में कर्म और यज्ञवृत्ति है, वे द्वापरयुग में निवास करने वाले हैं। ये बहिरंग साधनों

को अधिक महत्त्व देते हैं। कुछ लोग ऐसे हैं कि जिनके जीवन में दैन्यवृत्ति है। जो अलग-अलग वृत्तियाँ हैं ये दो तरह से होती हैं। एक तो आप यह निर्णय कर लीजिए कि आप किस युग वाले हैं? गोस्वामीजी से भगवान् राम ने पूछा कि तुम किस युग के हो? बोले कि मैंने तो यही सोच लिया है कि मेरे अन्तःकरण में जिस समय जो युग आये उस समय उसी रूप में मैं आपको बुला लूँगा। इसका अर्थ यह है कि यदि आपके अन्तःकरण में त्रेतायुग हो तो श्रीराम की लीला देखिए, तब आनन्द आयेगा और आपका अन्तःकरण द्वापरयुग में हो तो श्रीकृष्णलीला देखिए, तब आनन्द आयेगा और यदि दोनों में हो तो? गोस्वामीजी ने तो अहल्या उद्धार के प्रसंग में दोहरा लाभ लिया। इस सन्दर्भ में सूत्र आता है कि गोस्वामीजी ने भगवान् राम की लीला और भगवान् राम के नाम की महिमा, इन दोनों की तुलना की। श्रीराम और नाम की तुलना प्रारम्भ में करनी चाहिए थी अयोध्या में, भगवान् राम के प्राकट्य से, पर ऐसा नहीं किया है, बल्कि उन्होंने प्रारम्भ किया अहल्या से, यह विलक्षणता है कि–

राम एक तापस तिय तारी।
नाम कोटि खल कुमति सुधारी।।१/२३/३

और आगे चलकर जितनी लीलाएँ हैं, सबकी तुलना है–

रिषि हित राम सुकेतुसुता की।
सहित सेन सुत कीन्हि बिबाकी।।
राम सकुल रन रावनु मारा।
सीय सहित निज पुर पगु धारा।।
सेवक सुमिरत नामु सप्रीती।
बिनु श्रम प्रबल मोह दलु जीती।।१/२३-२४/४,५,७

अहल्या-प्रसंग से लेकर रामराज्य तक भगवान् श्रीराम की जो लीलाएँ हैं, उसकी तुलना रामनाम से करते हैं। अहल्या से क्यों शुरू किया? गोस्वामीजी नाम के उपासक हैं। आप सगुण-साकारवादी हैं कि

निर्गुण-निराकारवादी? एक तीसरा अतिथि और है–

हिय निरगुन नयननि सगुन रसना नाम सुनाम।

तीसरा अतिथि दोनों अतिथियों से भी बड़ा है, क्योंकि निर्गुण अन्तर्यामी है और सगुण बहिर्यामी है और रामनाम? कहा कि–

राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरी द्वार।

प्रभु का नाम दरवाजे पर रखा वह दीपक है जिससे भीतर-बाहर दोनों जगह प्रकाश है। इसलिए मेरी दृष्टि में सर्वश्रेष्ठ तो प्रभु का नाम ही है। एक विलक्षणता और भी आप पायेंगे कि इतिहास का क्रम भी बदल दिया। लीला में पहले ताड़का-वध करते हैं, बाद में विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करते हैं, इसके बाद जनकपुर जाते समय अहल्या का उद्धार करते हैं। तुलना करते समय अहल्या को पहले ले लिया और ताड़का को बाद में। चरित्र और लीला (नाटक) में अन्तर होता है। चरित्र तो एक बार होता है, जबकि नाटक हजारों बार दोहराया जा सकता है। बार-बार खेला जा सकता है। इतना ही नहीं, नाटक जब आप अपने रंगमंच पर प्रदर्शित करें तो अपना मनमाना परिवर्तन करने में भी स्वतन्त्र हैं। श्रीराम की लीला में भी परिवर्तन करने की भक्तों को पूरी स्वतन्त्रता है। बाहर आपने चाहे जैसी भी लीला की हो, परन्तु हमारे अन्तःकरण के रंगमंच पर तो आप ऐसी लीला कीजिए।

किसी ने पूछा कि वाल्मीकिजी ने 'रामायण' पहले लिखी कि भगवान् राम का अवतार पहले हुआ? कई तरह से इसका समाधान किया जाता है, परन्तु मैंने कहा कि बात दोनों तरह से कही जा सकती है। यदि 'रामायण' को इतिहास मानें तो श्रीराम का अवतार पहले होगा और बाद में वाल्मीकिजी 'रामायण' लिखेंगे और यदि 'रामायण' को लीला मानें, नाटक मानें तो नाटक पहले लिखा गया और बाद में खेला गया।

इतिहास में घटना पहले होती है और बाद में लिखी जाती है, परन्तु लीला या नाटक में नाटक पहले लिखा जाता है और बाद

में उसको खेला जाता है। दोनों बातें ठीक हैं। वाल्मीकिजी पहले नाटक लिखेंगे, तब बाद में भगवान् वह लीला प्रस्तुत करेंगे? इसीलिए वे कौसल्याजी के सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये। माँ ने कहा कि यह रूप कैसा? बोले कि जैसा आपने कहा था उसी रूप में तो आ गया। मुझे तो अभिनय वही करना है, जो आपको पसन्द हो। आपने कहा था कि पुत्र बनिये तो मैं पुत्र बन गया। आपने कहा था कि मुझे विवेक दीजिएगा तो मैं अपने चतुर्भुज रूप में प्रकट हो गया। अब आप मुझे आगे का पाठ बता दीजिये कि मुझे आगे क्या करना है? माँ ने बहुत बढ़िया भूमिका दे दी। माँ को सुविधा भी हो गयी।

कोई आपसे पूछे कि क्या सेवा करें? और आप कहें कि रोइए? तब तो सामने वाला व्यक्ति सोचेगा कि यह कैसा व्यक्ति है, जो मुझे रोने के लिए कह रहा है? माँ चाहती यही हैं कि श्रीराम रोयें, पर श्रीराम से कैसे कहें कि आप रोइए? दोनों में शब्द बहुत सुन्दर लिखा गया है। प्रभु ने पूछा–

कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै।
माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा।।
कीजै सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा।।

१/१९१ छं. ३-४

ऐसा नहीं कहा कि आप रोइए, शब्द कितना सुन्दर चुना है–

कीजै सिसु लीला

जब नाटक ही है तो क्या बात है? अन्यत्र यदि किसी से रोने के लिए कहा जाय तो उसको बुरा लगेगा, परन्तु नाटक में यदि किसी अभिनेता को रोने के लिए कह दिया जाय तो वह नाटक सफल तभी होगा, जब वह इतना बढ़िया रोये कि उसके रोने को सभी लोग सुनें। माँ ने कह दिया कि अगर नाटक आगे बढ़ाना है तो अब बालकों वाली लीला प्रारम्भ कर दीजिए। भगवान् बड़े प्रसन्न हुए–

सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा।

आनन्द आ गया। एक नाटक का रोना ही ऐसा है कि जो अभिनेता को बहुत आनन्द देता है, वह सबको रुला देता है, लेकिन वह स्वयं प्रसन्न, तटस्थ और द्रष्टा भी बना रहता है। इस सन्दर्भ में मैं एक बात और कह दूँ कि पौराणिक रूप से युगों का भी एक क्रम है–सतयुग के बाद त्रेता आयेगा, त्रेता के बाद द्वापर आयेगा, उसके बाद कलियुग आयेगा, लेकिन हमारे-आपके अन्तःकरण में जो युग आते हैं वे भी इसी क्रम से आते हैं क्या? नहीं, बिल्कुल नहीं आते? हमारी-आपकी जो मनःस्थिति है, उसमें जो युगों की भूमिका है, वह क्रम से नहीं है। गोस्वामीजी ने रामनाम की जो लीला प्रारम्भ की, वह अयोध्या वाली लीला नहीं, बल्कि वृन्दावन वाली, मथुरा वाली, गोकुल वाली लीला है। गोस्वामीजी से पूछा गया कि आप रामनाम का जप करते हैं तो **रामनाम** क्या है? राम की लीला से तुलना कीजिए। तो गोस्वामीजी तुरन्त श्रीकृष्ण लीला में आ गये–

जीह जसोमति हरि हलधर से।१/१६/८

मेरी जिह्वा यशोदा है और 'रा' और 'म' जो दो अक्षर हैं ये श्रीकृष्ण और बलराम हैं। बड़े अनोखे निकले! लिखना तो चाहिए था कि मेरी जिह्वा कौसल्या है और 'रा' तथा 'म' जो दो अक्षर हैं, वे राम और लक्ष्मण हैं। अचानक रामजन्म को छोड़कर कृष्णजन्म में कैसे आ गये? जिह्वा को कौसल्या के स्थान पर यशोदा क्यों बना दिया? गोस्वामीजी ने कहा कि भई! मुझको तो जहाँ भी अपने काम की बात दिखायी देती है, मैं वही ले लेता हूँ। यहाँ तो मैं वही चाहता हूँ जो मथुरा और वृन्दावन से जुड़ी हुई है।

अन्तःकरण की दो स्थितियाँ हैं–कारागार की स्थिति और राजमहल की स्थिति। राजा स्वतन्त्र रहकर शासन करता है और बन्दी परतन्त्र है, कारागार में बन्द है। हम अपने जीवन में झाँक कर देखें कि हम स्वतन्त्र हैं कि परतन्त्र हैं? हमें अपने जीवन में कभी स्वतन्त्रता का अनुभव होता है, तो कभी परतन्त्रता का। हम जो चाहते हैं, वह

करने में समर्थ होते हैं, तो हमें स्वतन्त्रता का बोध होता है, लेकिन जब हम चाहकर भी वैसा नहीं कर पाते तब हमें परतन्त्रता का बोध होता है, तब गोस्वामीजी बहुत बढ़िया उपाय बतलाते हैं कि यदि जीवन में हमें स्वतन्त्रता का अनुभव हो रहा है तो जीवन में राम को बुलाइए। उस समय श्रीराम का अवतार होगा और अगर परतन्त्रता का अनुभव हो रहा है तो श्रीकृष्ण को बुलाइए। इसका अर्थ है कि आप कहाँ हैं? कारागार में हैं कि राजमहल में?

यदि आप राजमहल में हैं तो यज्ञ कीजिए और यज्ञ करके श्रीराम को आमन्त्रित कीजिए और वे आयेंगे। यज्ञ करने की स्वतन्त्रता है, पूजा-पाठ करने की स्वाधीनता है, साधन करने की स्वतन्त्रता है, लेकिन वसुदेव-देवकी कारागार में हैं और कारागार में वे साधन करने में असमर्थ हैं। दो स्थितियाँ हैं—साधन का सदुपयोग या असमर्थता। साधन का सदुपयोग हुआ तो महल में जन्म ले लिया और असमर्थता की तीव्रतम अनुभूति हुई तो कारागार में आ गये। गोस्वामीजी को लगा कि अहल्या के उद्धार के पूर्व की अयोध्या की लीला अपने काम की नहीं है, क्योंकि हमारा हृदय, हमारा अन्तःकरण अयोध्या जैसा नहीं है। गोस्वामीजी को इसीलिए सबसे बढ़िया श्रीराम की कौन-सी झाँकी पसन्द आयी? जब श्रीराम लंका में सुबेल शैल पर पहुँचे तो झाँकी का वर्णन किया और अन्त में लिखा कि यही झाँकी मुझे सबसे अधिक पसन्द आयी—

धन्य ते नर एहिं ध्यान जे रहत सदा लयलीन।६/११क

अयोध्या, चित्रकूट और मिथिला वाली झाँकियों के लिए हृदय को अयोध्या, चित्रकूट या मिथिला बनाना पड़ेगा। हमको दशरथ, वाल्मीकि और जनक बनना पड़ेगा। जिसके लिए बड़ा परिश्रम करना पड़ेगा, लेकिन सुबेल शैल की झाँकी के लिए तो मेरा हृदय लंका बना-बनाया है, उसके लिए कुछ करना नहीं पड़ेगा। लंका में तो बन्दरों से घिरे हुए हैं, जो अत्यन्त अशान्त और चंचल हैं, जैसे हम

हैं। इनको देखकर सन्तोष होता है कि चंचल मन वाले भी श्रीराम को पा सकते हैं। यह गोस्वामीजी की चुनने की जो पद्धति है बड़ी ऊँची है और बड़े काम की है।

जिस समय आपके अन्तःकरण में जो युग होगा और जिस तरह की मनःस्थिति का आपको अनुभव हो, उसी का आप आनन्द लीजिए। गोस्वामीजी कहते हैं कि अयोध्या तो अपना अन्तःकरण है ही नहीं, न तो महाराज दशरथ हैं और न तो कौसल्या हैं, अतः डर गये। जिह्वा को कौसल्या कैसे बनाऊँ? कौसल्या पूर्वजन्म में शतरूपा थीं और दशरथजी पूर्वजन्म में मनु थे, जिन्होंने कितनी कठोर तपस्या की! अन्न छोड़कर फल लिया, फिर फल छोड़कर जल लिया, जल छोड़कर वायु ली और वायु छोड़कर निराकार हो गये। इस प्रकार श्रेष्ठतम साधन और यज्ञादि के पश्चात् भगवान् की प्राप्ति हुई। हमारी जीभ तो रसों का परित्याग करने में समर्थ नहीं है, न यज्ञ करने में समर्थ है, न हम स्वतन्त्र हैं। इसलिए हमें तो सबसे अच्छी, अपने काम की यशोदा ही लग रही हैं। क्यों? अयोध्या में तो आप दिन में आये और आते ही कौसल्या माँ ने स्तुति किया। यशोदाजी के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण को पाने में कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ा। वसुदेवजी आकर बगल में सुला गये और इतने पर भी नींद नहीं खुली तो भगवान् ने रोकर जगा दिया। गोस्वामीजी ने कहा कि अपनी जीभ भी सो रही है अब उस पर आप आकर यदि रामनाम का जप कराना हो तो करा लीजिए, मेरी जीभ तो जप करने में समर्थ नहीं है। आप ही उसको जगा दें। इसका अभिप्राय है कि श्रीकृष्णलीला का एक आनन्द वे ले लेते हैं। जब वे अपनी असमर्थता का अनुभव करते हैं तो उनको ऐसा लगता है कि हमारा अन्तःकरण तो वस्तुतः सुषुप्त है और उस सुषुप्त अन्तःकरण में जिह्वा पर आ करके प्रभु उसको चैतन्य कर दें।

इस प्रकार उन्होंने अपनी जिह्वा को यशोदा बनाया। कौसल्या

नहीं बनाया, परन्तु चुनाव करने में जब अहल्या का उद्धार भगवान् राम ने किया तब गोस्वामीजी ने अपने आपको तुरन्त बदल लिया। नामवन्दना के प्रसंग में पहले अहल्या की और बाद में ताड़का की चर्चा क्यों की? गोस्वामीजी ने प्रभु के चरणों को पकड़कर कहा कि आपने ताड़का का वध किया, परन्तु अहल्या का उद्धार किया। आपने त्रेतायुग में यही किया, लेकिन मेरे जीवन में आइएगा तो उद्धार पहले कीजिएगा और संहार बाद में कीजिएगा। आप यदि संहार पहले करने लगेंगे तो हमको डर लगने लगेगा। यही तो लीला में आनन्द है। भले ही उस युग में ताड़का पहले आयी हो और बाद में अहल्या, लेकिन गोस्वामीजी के जीवन में सबसे प्रिय प्रसंग जो उनको लगा, वहाँ पर उन्होंने कितना सुन्दर चुनाव किया? गोस्वामीजी ने चुनाव किया–

राम एक तापस तिय तारी।१/२३/३

श्रीराम जनकपुर जा रहे हैं, जहाँ सीताजी से परिणय होगा। सीताजी उनके चरणों का स्पर्श करेंगी। उनका पाणिग्रहण होगा, पर गोस्वामीजी को सबसे अधिक आनन्द किस बात से आया? देखिये! यहाँ एक संकेत सूत्र है। सीताजी हैं पतिव्रता शिरोमणि और अहल्या हैं पातिव्रत से च्युत। सीताजी की वन्दना में कहा गया है कि–

जनकसुता जग जननि जानकी।
अतिसय प्रिय करुनानिधान की।।
ताके जुग पद कमल मनावउँ।
जासु कृपाँ निरमल मति पावउँ।।१/१७/८

सीताजी निर्मल मति देती हैं। श्रीराम जा रहे हैं जनकपुर की ओर और अहल्या सामने आ गयी। गोस्वामीजी इस लीला को अपने जीवन से जोड़ते हैं। 'विनय-पत्रिका' में श्रीराम ने गोस्वामीजी से कहा कि मेरा स्मरण क्यों करते हो? गोस्वामीजी ने कहा कि जब मैं आपकी लीलाओं को पढ़ता हूँ और अपने जीवन से मिलाता हूँ तो वे समस्याएँ मुझे अपने जीवन में भी दिखायी देती हैं जो उस

समय थीं। मुझे सबसे अधिक जो आशा बँधी, जो प्रेरणा मिली, वह अहल्योद्धार से मिली। अहल्या तो एक पत्थर थी, लेकिन यहाँ तो उससे हजार गुना पत्थर मेरे पास है और वह पत्थर कौन-सा है? अहल्या कौन-सी है?–

सहस सिलाहूतें जड़मति भई है।

–विनय-पत्रिका

यह जो हमारी बुद्धि है, यह हजार-हजार अहल्याओं की अपेक्षा भी जड़ है। गोस्वामीजी ने कहा कि आप जा रहे हैं निर्मल मति देने वाली सीताजी के पास, तो पहले जड़मति का उद्धार होगा, तभी तो निर्मल मति मिलेगी। गोस्वामीजी अपने अन्तःकरण की स्थिति की तुलना अहल्या से करते हैं। अहल्या-प्रसंग मानो दीनों के लिए श्रेष्ठतम आश्वासन है। अब श्रीराम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं कि नहीं? अगर अहल्या से मर्यादा भंग हुई है तो मर्यादा पुरुषोत्तम को तो उसका तिरस्कार करना चाहिए। इसीलिए मैं कहता हूँ कि उनको मर्यादा पुरुषोत्तम मानकर घाटे में मत रहिए।

बालि ने भगवान् से कहा कि आपने धर्म की रक्षा के लिए अवतार लिया है। ऐसा कहकर बालि फँस गया। अगर बालि कह देता कि आपका अवतार तो करुणा करने के लिए हुआ है, कृपा करने के लिए हुआ है, तब तो बालि बच जाता, पर उसके मुँह से निकल गया कि **धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं**। तब तो जो अधर्म करेगा उसको दण्ड दूँगा, तभी तो अवतार का कार्य पूरा होगा। बालि ने सोचा कि कहाँ से मैं यह धर्म की बात कह बैठा? पुनः बालि ने कहा कि यह मेरी भूल थी, आपका अवतार तो करुणा के लिए हुआ है–

सुनहु राम स्वामी सन चल न चातुरी मोरि।
प्रभु अजहूँ मैं पापी अंतकाल गति तोरि।।४/९

भगवान् मुस्कराये और तुरन्त सिर पर हाथ रख दिया–

अचल करौं तनु राखहु प्राना।४/९/२

भगवान् श्रीकृष्ण के चरित्र में भी मर्यादा है, लीला है, करुणा है, त्याग है, सब कुछ है और भगवान् राम के चरित्र में भी सब कुछ है, पर अलग-अलग प्रसंगों में भाव के उपासक की दृष्टि से है। बालि के सामने ही भगवान् के दोनों रूप आ गये। तो भई! भगवान् राम को मर्यादा पुरुषोत्तम मानने में बड़ा संकट है। अगर कानून के हिसाब से चलेंगे तो बालि को मरना ही चाहिए। मर्यादा का दण्ड तो यही है। किसी ने मुझसे पूछा कि 'वाल्मीकि रामायण' को पढ़कर ऐसा लगता है कि श्रीराम बड़े मर्यादावादी थे और 'मानस' में बार-बार कहा गया है कि वे बड़े दयालु थे तो आपकी समझ में वे मर्यादा पुरुषोत्तम हैं कि दयालु हैं? मैंने कहा कि भगवान् राम तो दोनों हैं, मर्यादा पुरुषोत्तम भी हैं और दयालु भी हैं, पर इसके साथ मैं कहा करता हूँ कि हम लोग भी दोनों हैं, लेकिन थोड़ी-सी बात उलट गयी है।

भगवान् श्रीराम अपने लिए मर्यादा पुरुषोत्तम हैं और दूसरों के लिए दयालु हैं। और हम लोग अपने लिए दयालु हैं और दूसरों के लिए मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। अपने चरित्र के लिए हम कह देते हैं कि भई! ऐसा तो हो ही जाता है, यह तो मनुष्य का स्वभाव है। हम अपने लिए उदार हैं और जब दूसरों के चरित्र पर विचार करते हैं तो हम कह देते हैं कि अरे! यह तो शास्त्र, स्मृति और कानून के विरुद्ध है, गलत आचरण है। गोस्वामीजी तो भगवान् की सभा में पहुँच गये। पूछा गया कि क्या सुनकर आये हो? तब यह नहीं कहा कि आप मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, ऐसा सुनकर आया हूँ, बल्कि कहा कि–

मैं हरि पतित-पावन सुने।

–विनय-पत्रिका, १६०

आपकी सभा में तो पतित दिखायी नहीं दे रहे हैं, अतः यदि इस कमी को दूर करना है तो मुझे शरण में ले लीजिए। मानो ईश्वर ऐसा है, यह मानकर मत चलिए। आपको ईश्वर के किस रूप की

आवश्यकता है? इस पर विचार कीजिए। ईश्वर तो ताड़का के लिए न्यायकारी भी है और अहल्या के लिए करुणाकारी भी है। वैसे तो अहल्या-प्रसंग बड़ा विस्तृत है, पर संकेत सूत्र के रूप में मैं यों कहूँ कि उसको गोस्वामीजी ने कई रूपों में प्रस्तुत किया है।

अहल्या के जीवन में बड़ी साधना थी, एक पतिव्रता के रूप में वह अपने पति गौतम ऋषि की सेवा करने वाली थी, लेकिन उसके जीवन में एक क्षण ऐसा आया कि भोग-लालसा उत्पन्न हो गयी और उसका पतन हो गया। मानो यह संकेत करने के लिए है कि कोई कितना भी बड़ा धर्मात्मा, कितना भी सावधान रहने वाला क्यों न हो? यह दावा करना बड़ी धृष्टता है कि हमारे जीवन में एक क्षण के लिए भी पतन नहीं होगा। जीव का स्वभाव कभी न कभी फिसल जाने का है। हम अपने अन्तःकरण की वासनाओं को कितना भी दबायें, पर कभी न कभी वासना चैतन्य हो जाती है।

आध्यात्मिक अर्थों में इसका अभिप्राय यह है कि अहल्या बुद्धि है और गौतम धर्म हैं। बुद्धि को निरन्तर धर्म की सेवा करनी चाहिए और इन्द्र में महत्तम स्वर्ग के भोग हैं। बुद्धि को तो सदा धर्म की ही सेवा करनी चाहिए, लेकिन बुद्धि कभी-कभी भोगों के आकर्षण से भोगों को स्वीकार कर लेती है और तब बुद्धि जड़ हो जाती है। हमारी बुद्धि जब धर्म का संस्पर्श छोड़कर जड़ भोगों से जुड़ेगी तो उसमें जड़ता आये बिना नहीं रहेगी। अनगिनत जीवों की भी यही कहानी है।

कौन दावा कर सकता है कि हमारे अन्तःकरण में कोई अहल्या नहीं है? इसका कोई उपाय है क्या? एक तो न्याय दिया गौतमजी ने जो अहल्या का परित्याग कर दिया। जिसका पतन हो गया, स्खलन हो गया, जो वासना से जड़ हो गयी उसका परित्याग ही करना चाहिए। किसी को छूत का रोग हो तो उसको कोई व्यक्ति नहीं छूता, लेकिन सन्त की दूसरी भूमिका क्या है? जब अहल्या ने

व्याकुल होकर कहा कि मेरी एक भूल के लिए इतना बड़ा दण्ड! अब मेरा कल्याण कैसे होगा? तब सन्त ने बहुत बढ़िया बात कही कि मैंने तो शास्त्र के अनुकूल दण्ड दिया है, पर करुणा करने का अधिकार तो ईश्वर को ही है।

सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश भी तो कानून के अनुसार ही दण्ड देगा, परन्तु माफ करने का अधिकार सिर्फ राष्ट्रपति को है। यह अधिकार न्यायालय को नहीं है कि वह किसी को क्षमा कर दे। अतः बुद्धि की जड़ता मिटाने का उपाय क्या है? उपाय यही है कि भगवान् के चरणों का संस्पर्श हो। जब विषय में रस की अनुभूति होगी तो जड़ता आ जायेगी और जब भगवान् के चरणों में रस आने लगेगा तो उसके संस्पर्श से हमारी जड़ बुद्धि में चेतनता आ जायेगी। श्रीराम ने शबरीजी से नवधाभक्ति कही, उसमें से यदि एक भी आ जाय तो काम बन जाय। गोस्वामीजी ने भगवान् से पूछा कि अहल्या में नौ भक्ति में से कौन-सी भक्ति थी? यहाँ बात उलट गयी। अहल्या तो पत्थर है, पत्थर सत्संग करेगा क्या? भगवान् राम विश्वामित्रजी को लेकर गये और बोले कि यह तो सत्संग नहीं कर सकती है, अब मैं ही सन्त को लिए चलता हूँ, अतः प्रथम भक्ति हो गयी—

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा।
दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।।३/३४/८

पत्थर कथा क्या सुनेगा? जब यह मेरी कथा नहीं सुन सकती तो चलो मैं ही इसकी कथा सुन लेता हूँ। मेरी कथा सुनने से कल्याण होता है तो मैं जिसकी कथा सुनूँगा, उसका कल्याण होगा कि नहीं, मानो अहल्या साधन नहीं कर रही है, भगवान् कर रहे हैं। सारी कथा विश्वामित्रजी ने सुना दी—

पूछा मुनिहि सिला प्रभु देखी।
सकल कथा मुनि कहा बिसेषी।।१/२०६/१२

तीसरी भक्ति है—

गुरु पद पंकज सेवा।

अहल्या नहीं कर सकती तो अब भगवान् राम ही गुरुजी की ओर देख रहे हैं कि क्या आज्ञा है? गुरुजी ने तुरन्त कह दिया—

गौतम नारि श्राप बस

यही सन्त की दृष्टि है। यह नहीं कहा कि इसका पतन हो गया है—

गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर।१/२१०

बेचारी एक क्षण के लिए फिसल गयी, जिसका इतना बड़ा दण्ड भोगना पड़ा, परन्तु—

चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर।१/२१०

प्रभु संकोच में पड़ गये। कोई किसी के चरणों पर सिर रखे या कोई हाथ रखकर आशीर्वाद दे या देखकर आशीर्वाद दे, यह तो ठीक है, परन्तु कोई अपनी ओर से किसी के सिर पर पैर रख दे, ऐसा तो नहीं होता, अहल्या प्रभु का संकोच समझ गयी और जड़ होते हुए भी उसने संकेत किया कि महाराज! गुरुजी ने बहुत बढ़िया बात कही है। आप चाहें तो नेत्र से भी कृपा कर सकते हैं—

राम कृपा करि चितवा सबहीं।६/४७/२

भगवान् आँख से भी कृपा करते हैं, पर अहल्या ने कहा कि महाराज! आँख से कृपा बिल्कुल मत कीजिएगा, क्योंकि यदि आँख खोलकर मेरी ओर देखिएगा तो मेरा इतना पाप आपको दिखायी देगा कि आप आँख मूँद लेंगे। इसलिए आप आँख मूँदे ही रखिए। आप देखिए ही मत कि मैंने क्या किया? और हाथ से भी कृपा मत करिए, क्योंकि आपने तो हाथ में दण्ड देने का शस्त्र धनुष ले रखा है, जो न्याय का प्रतीक है। तब आपको ऐसा ही लगेगा कि अहल्या को तो दण्ड ही देना चाहिए। इसलिए मैं नेत्र और भुजा से कृपा नहीं चाहती, मैं चरणों से कृपा चाहती हूँ। जिन चरणों से गंगा

निकली हैं और जिन गंगा से किसी ने आज तक यह नहीं पूछा कि तुम किस जाति की हो, किस वर्ण की हो, पापी हो या पुण्यात्मा हो।

यह जो भगवान् की दिव्य कृपा है, वह चरणों से ही मिलनी चाहिए। जो जड़ बुद्धि है वह कभी न कभी फिसल ही जाती है, तब वह भगवान् की करुणा से चैतन्य होकर भक्तिरस से ओत-प्रोत हो जाती है। गोस्वामीजी ने लिखा कि स्वयं गौतम आये और अहल्या को लेकर गये। गौतम ने गद्‌गद होकर अहल्या से कहा कि अहल्या! मैं धन्य हो गया। मैं यदि चरण छूना चाहता तो शायद भगवान् मर्यादा के कारण कभी चरण छूने नहीं देते। तुम्हारे पत्थर बनने से तुम्हें तो यह लाभ मिल गया। तुम मेरी अर्द्धांगिनी हो, इसलिए तुम्हें जो कुछ मिला उसमें आधा तो मेरा भाग है ही। मुझे तो अपने मार्ग से नहीं, तुम्हारे मार्ग से भक्ति मिली।

भगवान् कृष्ण की लीला में प्रेम की लीला पहले, मर्यादा की लीला बाद में सम्पन्न होती है। भगवान् राम के चरित्र में मर्यादा की लीला पहले और प्रेम की लीला बाद में की जाती है। पुष्पवाटिका प्रसंग क्या है? जो रासपंचाध्यायी है, वही पुष्पवाटिका है, पर लीला का अन्तर है। पुष्पवाटिका में भगवान् शरद्‌पूर्णिमा को गये और भगवान् कृष्ण की रासलीला भी शरद्‌पूर्णिमा को हुई, पर एक दिन में हुई और दूसरी रात में हुई। यह तो आनन्द लेने की बात है।

आपके हृदय में यदि उजाला हो तो पुष्पवाटिका की लीला देख लीजिए और रात में यदि चन्द्रमा की शीतलता का अनुभव करना है तो रासलीला देख लीजिए। गोस्वामीजी कहते हैं कि दोनों ठीक हैं। श्रीराम और श्रीसीताजी दोनों पुष्पवाटिका में एक-दूसरे को देखते हैं, पर एक शब्द भी नहीं बोलते और लौट आते हैं। यह मर्यादा की पराकाष्ठा है, लेकिन गोस्वामीजी को लगा कि अरे! अगर इतने निकट आकर भी बोल न पायें तो प्रेम की परिपूर्णता कहाँ? मर्यादा

तो रही लेकिन प्रेम कहाँ रहा? कितने चतुर हैं। बाहर से तो जैसा लोग चाहते हैं, मर्यादा रही, क्योंकि न तो श्रीराम सीताजी से बोले और न सीताजी श्रीराम से बोलीं। परन्तु भीतर प्रेम-राज्य में क्या हो गया? प्रेमराज्य में तो और ही लीला हो गयी।

पुष्पवाटिका में श्रीसीताजी चारों ओर प्रेम भरी दृष्टि से श्रीराम का स्वागत कर रही हैं और जब वे देखती हैं तो गोस्वामीजी कहते हैं कि ऐसा लगता है कि जैसे कमलों की वर्षा हो रही है। जनकपुर की स्त्रियाँ तो ऊपर से फूल बरसाती हैं, पर सीताजी मर्यादा के कारण बाहर से बरसा नहीं कर रही हैं, परन्तु अपनी दृष्टि के जो दिव्यपुष्प हैं उनको श्रीराम के स्वागत में बिछा रही हैं। इसके पश्चात् क्या किया? अतिथि जब आता है तो उसको मार्ग से घर ले आते हैं। श्रीसीताजी ने क्या किया? मर्यादा में बाहर तो दूर खड़े हैं, परन्तु प्रेमराज्य में या भावराज्य में–

लोचन मग रामहि उर आनी।
दीन्हे पलक कपाट सयानी।।१/२३१/७

बाहर दूरी बनी हुई है, लेकिन भीतर श्रीराम दूर नहीं हैं, आ गये हृदय में। किसी ने गोस्वामीजी से पूछा कि अतिथि को घर लाकर उसे खिलाते-पिलाते हैं, सत्कार करते हैं, जब सीताजी श्रीराम को अपने हृदय-मन्दिर में ले आयीं तो आगे भी तो बताइए कि उन्होंने भगवान् राम का सत्कार कैसे किया? क्या रस की अद्‌भुत बात उन्होंने कही! मर्यादा की आड़ में कहा कि हृदय मन्दिर में लाकर नेत्र के किवाड़ बन्द कर लिये, अब कोई जान नहीं सकता है कि भीतर कैसा स्वागत हो रहा है? मानो सांकेतिक अभिप्राय है कि भई! अब तो दोनों का दिव्य मधुर मिलन ही है।

इसका अभिप्राय है कि जहाँ बाह्य जगत् में मर्यादा की रक्षा हो रही है, वहीं अन्तःकरण में दोनों का ऐसा दिव्य एवं पूर्ण मिलन हो रहा है, जो शब्दों से परे है। भावराज्य के जगत् में तो प्रेम की

अपेक्षा है और व्यावहारिक जगत् में मर्यादा की आवश्यकता है तो दोनों जगत् की आवश्यकता है। दोनों को सम्मिलित करना है जीवन में। इसका अर्थ है कि हम व्यवहार में चलें तो भगवान् राम की जो मर्यादा है उसका पालन करें। अन्तःजीवन में जो प्रेम का संचार हो रहा है, उस भावराज्य की स्थिति बहिरंगराज्य से सर्वथा भिन्न है। वस्तुतः 'रामायण' एवं 'भागवत' ये दोनों ही ग्रन्थ अद्वितीय हैं और हमारे एक ही प्रभु कभी श्रीराम बन जाते हैं तो कभी श्रीकृष्ण बन जाते हैं। कभी वंशी बजाते हैं तो कभी धनुष पर बाण चढ़ा लेते हैं। कभी नृत्य करते हैं तो कभी नचाते हैं। किसी ने गोस्वामीजी से पूछा कि श्रीकृष्ण ने तो गाय चरायी, पर आपके भगवान् तो इतना छोटा काम नहीं करेंगे। गोस्वामीजी ने कहा कि नहीं भई! राम के रूप में आये तो बन्दरों को चराया—

न भजे बिनु बानर के चरवा है।

—कवितावली, ७/५६

गाय के चराने में तो दूध भी मिलता होगा, लेकिन बन्दर के चराने में तो मिलने को कुछ भी नहीं है। वस्तुतः ये जो लीलाएँ हैं, जिस लीला में जिस समय आप जिस मनस्थिति में हों, उसी के अनुसार चलिए। अन्तःकरण में यदि गाय हो तो गोपाल को बुला लीजिए और वानरत्व हो तो वानर के चरवाहे के रूप में श्रीराम को देख लीजिए। अगर साधक को जीभ में साधन करने की शक्ति हो तो कौसल्या को ले आइए, परन्तु यदि असमर्थता हो तो जिह्वा को यशोदा बना लीजिए। इस तरह से दोनों के सिद्धान्तों में केवल मुख्यता और गौणता की ही बात है।

जासु नाम भव भेषज हरन घोर त्रय सूल।
सो कृपाल मोहि तो पर सदा रहउ अनुकूल।।७/१२४क

॥बोलिए सियावर रामचन्द्र की जय॥

।।श्रीरामः शरणं मम।।

परम पूज्यपाद श्री रामकिंकरजी महाराज द्वारा विरचित

साहित्य-सूची

क्रम पुस्तकों का नाम	खण्ड	विषय	मूल्य
१. मानस चिन्तन	१	अवतारवाद	
२. भवानीशंकरी वन्दे (मानस चिन्तन)	१	भगवान् शंकर की लीलाओं के प्रसंग	१४०/-
३. मानस चिन्तन	३	मानस के कुछ प्रमुख प्रसंग	८५/-
४. मानस मन्थन	१	श्रीराम का दिव्य चरित्	११०/-
५. हनुमत् चरित्र (मानस मन्थन)	२	हनुमान्‌जी की महिमा	११०/-
६. शिव तत्त्व (मानस मन्थन)	३	शिव महिमा	५०/-
७. लक्ष्मण चरित्र (मानस मन्थन)	४	लक्ष्मण जी का दिव्य चरित्र	८०/-
८. विभीषण शरणागति (मानस मन्थन)	५	मानस में विभीषण का स्वरूप	८०/-
९. प्रेममूर्ति भरत (हिन्दी)	१	भरतजी का भक्तिमय स्वरूप	४५/-
१०. मानस रोग	१	मानस रोगों का विश्लेषण	६०/-
११. मानस रोग	२	मानस रोगों का विश्लेषण	५५/-
१२. मानस रोग	३	मानस रोगों का विश्लेषण	५५/-
१३. मानस चिकित्सा	४	मानस रोगों की चिकित्सा	१००/-
१४. मुक्ति	५	मानस रोगों से मुक्ति	८०/-
१५. चातक चतुर राम श्याम घन के	१	मानस के अनेक प्रसंगों पर संक्षिप्त दृष्टि	५५/-
१६. धर्मसार भरत	१	भरत जी का धर्ममय स्वरूप	४५/-
१७. रामकथा शशि किरन समाना	१	मानस में प्रकृति वर्णन और तात्पर्य	५०/-
१८. तुलसी की दृष्टि	१	मानस-तुलसी की दृष्टि	६०/-
१९. मानस के चार घाट	१	मानस में ज्ञान, भक्ति, कर्म और शरणागति का रहस्य	६०/-
२०. साधुचरित	१	साधुचरित्र की व्याख्या	३५/-
२१. तुलसी रघुनाथ गाथा	१	भगवान् श्रीराम के चरित्र पर प्रवचन	४५/-
२२. मानस पंचामृत	१	काम, क्रोध, लोभ का जीवन में उपयोग	५५/-
२३. सुन्दरकाण्ड की सुन्दरता	१	सुन्दरकाण्ड विषय पर प्रवचन	८०/-
२४. रामगुन गाऊँ (काव्य संग्रह)	१	महाराजश्री का काव्य संग्रह	
२५. आदर्श मानव समाज	१	एक दिवसीय प्रवचन	१५/-
२६. शील सिन्धु राघव माधुर्य मूर्ति माधव	१	श्रीमद्भागवत् और रामायण का तुलनात्मक विवेचन	१५०/-
२७. मानस एवं विनय पत्रिका का तुलनात्मक अध्ययन	१	मानस एवं विनय पत्रिका की तुलना	६०/-

२८. मानस एवं गीता का तुलनात्मक विवेचन	१	मानस एवं गीता की तुलना	४०/-
२९. मानस एवं गीता का तुलनात्मक विवेचन	२	मानस एवं गीता की तुलना	५०/-
३०. वन्दे विदेह तनया	१	श्री सीताजी का पावन चरित्र	
३१. रामकथा मंदाकिनी	१	रामकथा की महिमा	१००/-
३२. नाम रामायण	१	भगवान्नाम की महिमा	६०/-
३३. मानस दर्पण	१	श्री सीताजी की खोज	
३४. भक्तात्रयी (मानस दर्पण)	२		१२०/-
३५. धर्मरथ (मानस दर्पण)	३		३०/-
३६. शिव-पार्वती विवाह (मानस दर्पण)	४		
३७. मानस मुक्तावली	१	मानस की चार सौ चयनित पंक्तियों की विषद व्याख्या	
३८. मानस मुक्तावली	२		
३९. मानस मुक्तावली	३		
४०. मानस मुक्तावली	४		
४१. मानस चरितावली	१	मानस के चौबीस भिन्न पात्रों के	१५०/-
४२. मानस चरितावली	२	चरित्र का स्वतंत्र मूल्यांकन	१५०/-
४३. धर्मसेतु संरक्षक (मानस प्रवचन)	१	धर्मसेतु पालक तुम ताता	१००/-
४४. अहंकार के रूप (मानस प्रवचन)	२	धनुष यज्ञ का प्रसंग	७५/-
४५. श्रीराम विवाह (मानस प्रवचन)	३	श्रीराम जानकी विवाह	१००/-
४६. मानस प्रवचन	४	गुरु की कृपा	
४७. मानस प्रवचन	५	श्री भरत का चित्रकूट प्रस्थान	३५/-
४८. केवट (मानस प्रवचन)	६	राम राज्य का प्रथम नागरिक	७५/-
४९. जीवन पथ (मानस प्रवचन)	७		३५/-
५०. मानस प्रवचन	८	महर्षि वाल्मीकि द्वारा चौदह प्रकार के भक्तों का वर्णन	
५१. मानस प्रवचन	९		
५२. मानस प्रवचन	१०		
५३. मानस प्रवचन	११		
५४. मानस प्रवचन	१२		
५५. मानस प्रवचन	१३		
५६. मानस प्रवचन	१४		
५७. मानस प्रवचन	१५		
५८. मानस प्रवचन	१६		
५९. मानस प्रवचन	१७		
६०. मानस प्रवचन	१८	चित्रकूट महिमा	३५/-
६१. मानस प्रवचन	१९	चित्रकूट में श्रीराम-भरत मिलाप	३५/-
६२. मानस प्रवचन	२०	श्रीभरत को श्रीराम द्वारा पादुका देना	३५/-
६३. वन पथ में श्रीराम	१	वन पथ में श्रीराम	३५/-
६४. श्रीराम गीता	१	भगवान् श्रीराम द्वारा लक्ष्मण को उपदेश	३५/-
६५. दण्डक वन	१	भगवान् श्रीराम की लीलाएँ	३५/-
६६. नवधा भक्ति	१	भगवान् श्रीराम द्वारा शबरी को उपदेश	३५/-
६७. नवधा भक्ति	२	भगवान् श्रीराम द्वारा शबरी को उपदेश	८०/-
६८. तुलसीदास मेरी दृष्टि में	१	तुलसीदास जी की आध्यात्मिकता	४५/-
६९. शरणागति का स्वरूप	१	शरणागति का रहस्य	
७०. कृपा और पुरुषार्थ	१	कृपा और पुरुषार्थ की मीमांसा	
७१. मानस मन्थन (गुजराती)	१	श्रीराम चरित्र	६५/-
७२. मानस मन्थन (मराठी)	१	श्रीराम चरित्र	६५/-
७३. प्रेममूर्ति भरत (गुजराती)	१	श्रीभरत जी का भक्तिमय स्वरूप	४५/-
७४. शिव तत्त्व (उड़िया अनुवाद)	१	शिव महिमा	४०/-
७५. राम-परशुराम	१	एक दिवसीय प्रवचन	
७६. श्रीराम के मित्र-सुग्रीव और विभीषण	१	एक दिवसीय प्रवचन	
७७. श्रीराम और श्रीकृष्ण	१	एक दिवसीय प्रवचन	
७८. मानस और भागवत में पक्षी	१	एक दिवसीय प्रवचन	
७९. श्रीराम सत्य या कल्पना ?	१	एक दिवसीय प्रवचन	
८०. प्रसाद	१	प्रसाद की महिमा	
८१. विजय, विवेक और विभूति	१	एक दृष्टि	
८२. सुन्दरकाण्ड	१	एक दिवसीय प्रवचन	१५/-
८३. श्री हनुमानजी महाराज	१	श्रीहनुमान् जी की महिमा	२५/-
८४. श्री राम नाम	१	श्रीराम नाम की महिमा	
८५. दस	१	दस - रथ/मुख	
८६. महारानी कैकेयी	१	निन्दनीय अथवा वन्दनीय	६०/-
८७. तस्मै श्री गुरवे नमः	१	महाराजश्री पर भावनात्मक दृष्टि	
८८. साधक साधन	१	साधना परक लेखों का संग्रह	५५/-
८९. ज्ञान दीपक	१	गरुड़-काकभुशुण्डि संवाद	६०/-
९०. ज्ञान दीपक	२	गरुड़-काकभुशुण्डि संवाद	७०/-
९१. अंगद चरित्र	१	भगवान् श्रीराम की नीति और प्रीति	८०/-
९२. श्रीराम का शील	१	श्रीराम का शील	५०/-
९३. काम	१		३०/-
९४. क्रोध	१		३०/-
९५. लोभ दया व दान	१		३५/-
९६. कृपा	१		३०/-
९७. भावसुमनांजलि	१	महाराजश्री की अर्चनात्मक भावसुमनांजलि	३०/-

६८.	रामकृपा रामायण	१	महाराजश्री के पिताजी द्वारा रचित संक्षिप्त रामायण	१०/-
६९.	दैनिक प्रार्थना	१	आश्रम की दैनिक प्रार्थना	१०/-

ऑडियो सी.डी. तथा ऑडियो कैसेट

क्रम	कैसेट/सी.डी.		मूल्य
१.	आश्रम की दैनिक प्रार्थना	ऑडियो सी.डी./कैसेट	३०/-
२.	गुरु वंदना	ऑडियो सी.डी./कैसेट	३०/-
३.	नाम मन्त्र	ऑडियो सी.डी./कैसेट	३०/-
४.	राम गुन गाऊँ	ऑडियो सी.डी./कैसेट	३०/-
५.	विनय	ऑडियो सी.डी./कैसेट	३०/-
६.	मन्थन	ऑडियो सी.डी./कैसेट	३०/-
७.	रामकृपा रामायण	ऑडियो सी.डी./कैसेट	३०/-

डाक द्वारा पुस्तकें प्राप्त करने का पता एवं नियम

"रामायणम् आश्रम"
युग तुलसी पं. रामकिंकर उपाध्याय परिक्रमा मार्ग, जानकीघाट, श्रीधाम अयोध्या:-२२४ १२३ (उ.प्र.)
फोन : (०५२७८) २३२१५२ फैक्स २३३४६८

१. इस सूची पत्र से पूर्व छपे सूची-पत्र के मूल्य रद्द माने जाएँ।
२. ड्राफ्ट या मनीऑर्डर "रामायणम् ट्रस्ट" (RAMAYANAM TRUST) अयोध्या के नामे भेजने का कष्ट करें।
३. प्रत्येक पार्सल पर १६/- रुपये रजिस्टर्ड शुल्क।
४. प्रत्येक पार्सल पर १७/- रुपये प्रति आधा किलो की दर से वजन शुल्क लगता है।
५. अधिक से अधिक एक पार्सल ३ किलो वजन का बन सकता है।
६. प्रत्येक पुस्तक पर अनुमानित ५/- रुपये पैकिंग खर्च आता है।

वन्दनीय शाश्वत परम्परा

विश्व आज भयानक सांस्कृतिक संकट से गुजर रहा है। इस सोचनीय अवस्था से मुक्त होने का साधन साहित्य ही हो सकता है, क्योंकि साहित्य में ही जन-मानस को परिष्कृत करने और रचनात्मक दिशा-दर्शन की क्षमता होती है। त्रिकालज्ञ ऋषियों की आप्त वाणी से लेकर आज तक श्रेष्ठ साहित्य ही मानव-मुक्ति और मानवीय विकास साधना का आधार बनता रहा है।

प्रभु श्रीराम भारतीय संस्कृति के प्राण-पुरुष और सनातन सत्य हैं। इसे संयोग ही कहा जा सकता है कि उनका अवतरण और **'विजयोत्सव'** दोनों ही **'वसंत'** के उजियारे पखवारे (शुक्ल पक्ष) में होता है और दोनों पखवारे **'शक्ति'** की आराधना के पखवारे हैं।

मंगल के अधिष्ठान प्रभु श्रीराम के स्मरण मात्र से परायापन दूर हो जाता है। गोस्वामी तुलसीदास जी भी कहते है - **"अपनो भलो, राम नामहिं तें, तुलसी समझि परो"** यही कारण है कि उनका काव्य **अपनाव** (अपनेपन/आत्मीयता) का काव्य है। वे संसार को ही **सियाराम मय** मानकर प्रणाम भी करते हैं। जिसे राम से प्रेम है वही संत है और सबका प्रेम-पात्र भी।

परम पूज्य पं. रामकिंकर जी महाराज जिनका सारा जीवन ही श्रीराम की कृपा से संचालित हुआ, उन्होंने **'शील सिन्धु राघव, माधुर्य मूर्ति माधव'** ग्रंथ में **'अपनी बात'** शीर्षक के अंतर्गत स्पष्ट रूपेण लिखा है कि - **"श्रीराम और श्रीरामचरित मानस से मेरा परिचय कितना पुराना है मेरे लिये बता पाना संभव नहीं है।"** युग तुलसी की संज्ञा से विभूषित महाराजश्री ने **'मानस मुक्तावली'** की भूमिका में स्वीकार किया है कि - **"मैं स्वयं को तुलसी के अंतरमन से इतना जुड़ा हुआ पाता हूँ कि घूम-फिर कर मैं स्वयं को भी उसी मनःस्थिति में एकाकार कर लेता हूँ।"** विचारणीय यह है कि महाराजश्री ने इस सबके बावजूद भी अपने आध्यात्मिक चिंतन और सत्यानुभूतियों से यह सिद्ध किया है कि परम्परा पूर्वपरता नहीं है। परम्परा तो अग्रसरीय होती है उसमें सृजन का गति-सातत्य तो होता ही है नवीनता भी परिलक्षित

होती है इसीलिए महाराजश्री के साहित्य में तथ्य, सत्य और ये दोनों ही कथ्य के रूप में मूर्तिमान हैं।

तप के लिये मन, संकल्प और उद्देश्य आवश्यक होता है। महाराश्री की साधना और उनके प्रवचन-साहित्य में इन तीनों का समावेश है। महाराजश्री ने लेखन से प्रकाशन तक शीर्षक में आबद्ध अपने आत्म कथात्मक लेख में लिखा है - "श्रवण, मनन, चिन्तन का यह क्रम चलता ही रहा XXX मैं भी अपनी लेखनी धन्य बनाऊँ ऐसा संकल्प बार-बार आता रहा। श्रीमद्भागवत और श्रीरामचरित मानस दोनों ही भगवान् के वाङ्मय विग्रह हैं और प्रवचन लेखन वे पुष्प है जो उनके चरणों में अर्पित किये जाते हैं।"

इस प्रकार उनका साहित्य वाङ्मयी आराधना ही है जिसमें वे लिखते हैं - संसार में मनुष्य जीवन में जितने भी दुःख है उन सबके कारण रूप में मनुष्य के भीतर विद्यमान राग, द्वेष और भेदबुद्धि भी है। XXX संसारी व्यक्ति का अपना दुःख और अपना सुख होता है। संसारी व्यक्ति **'स्व'** के सुख में सुखी होता है और **'पर'** के सुख में दुःखी होता है। कभी-कभी **'पर'** के दुःख से प्रसन्न भी होता है किन्तु साधु अथवा **संत** अपने दुःख से नहीं **'पर'** (दूसरे) के दुःख से दुःखी होता है यही दोनों में अंतर है।

संतत्व के पर्याय परम पूज्य पं. रामकिंकर जी महाराज के आदर्शों का अनुगमन करते हुये **पूज्य दीदी मंदाकिनी श्री रामकिंकर जी** जहाँ राम-कथा मंचों से आज पूरे देश में राम कथा अमृत का पान करा रही हैं वहीं वे महाराजश्री के साहित्य को जन-जन तक पहुँचाने के लिए निरंतर प्रयासरत भी हैं। **यह शाश्वत परम्परा वंदनीय है।** महाराजश्री की साधना से सुवासित और संतत्व की गरिमा से मण्डित राम-साहित्य आपके जीवन-पथ को सुगम और सारगर्भित बनाने की रहस्यानुभूतियाँ तो करायेगा ही सभी प्रकार से मंगलकारी भी सिद्ध होगा।

राम-कथा की इस शाश्वत परम्परा को प्रणाम निवेदित करते हुए -

गुरु चरण अनुरागी

- डॉ. सत्यनारायण 'प्रसाद'
जबलपुर

|| श्रीरामः शरणं मम ||

प्रभु तो एक ही हैं, और वे एक ही प्रभु अपने को विभिन्न रूपों में प्रस्तुत करते हैं। बहुधा यह कहा जाता है कि भगवान् श्री राम मर्यादापुरुषोत्तम हैं और भगवान् श्रीकृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम या लीला पुरुषोत्तम हैं। प्रश्न यह है कि भगवान् के इतने रूपों का वर्णन किया जाता है और उनमें परस्पर इतनी भिन्नता प्रतीत होती है, तो वस्तुतः भगवान् का वास्तविक रूप कौन सा है?

- रामकिंकरजी

'कविता' हर कवि की सम्पत्ति होती है और कवि उसको बोले बिना रह जाये, क्या सम्भव है? यदि यह असम्भव स्थिति कायम रहने लगे तो वह कवि कितनी बड़ी अनासक्ति का पोषक है, इसका अनुमान लगाना बड़ा कठिन है, और इस कठिनाई का कारण ढूँढ पाना और भी कठिन है। **परम पूज्य महाराजश्री** पिछले 40-50 वर्षों से हृदयस्पर्शी कविताएँ लिखते रहे हैं, पर आपने इसकी भनक भी नहीं पड़ने दी और इस **काव्य-कुण्ड** को बड़ी अनासक्ति के साथ अज्ञात रखा जो बड़ी मर्मस्पर्शी बात है। इनके भक्तों और प्रशंसकों ने कुछ कविताओं को **'राम गुन गाऊँ'** नाम से पुस्तकाकार करा दिया है, ताकि उनका कवि स्वरूप भी जनमानस तक पहुँच सके। सम्भवतः भावी शोधकर्ताओं को यह सामग्री खूब रुचिकर और प्रासंगिक प्रतीत होगी...।

- रामनिवास जाजू